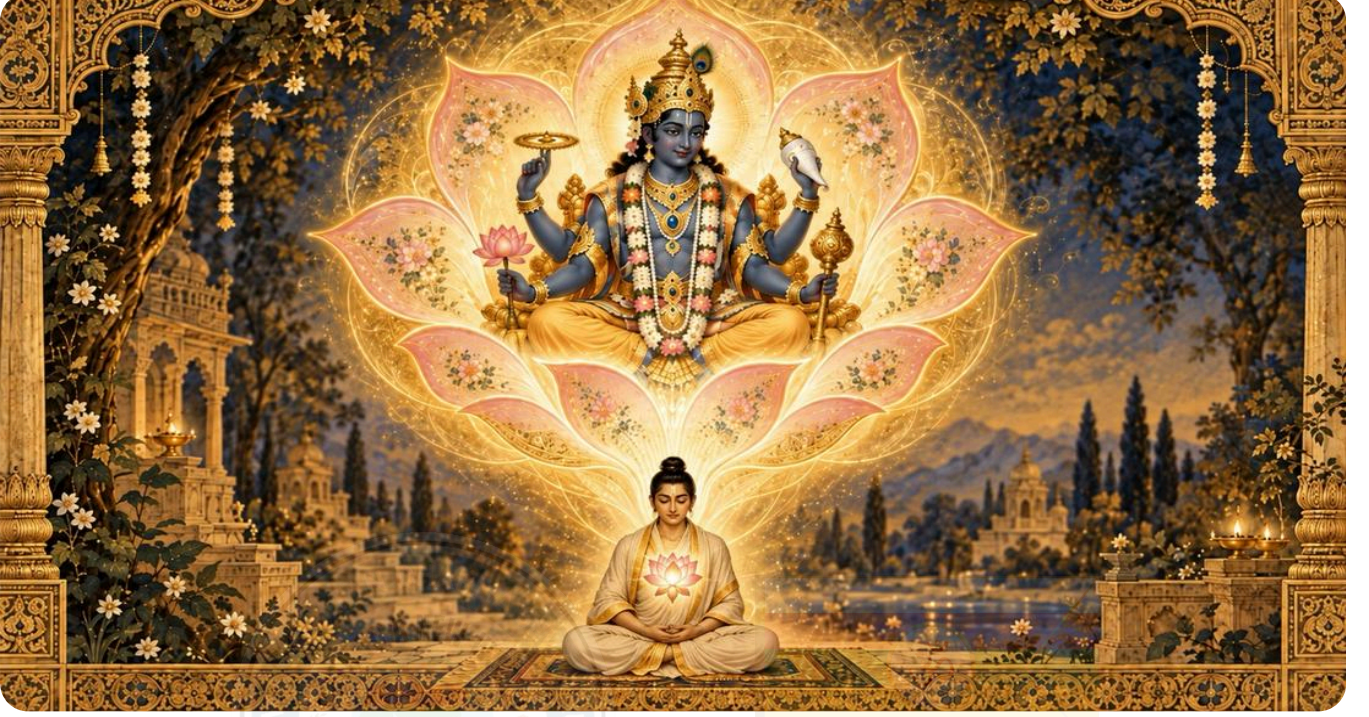


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 14: योग-विद्या का उपदेश

5 October 2026



उद्धव भगवान् से सबसे श्रेष्ठ मार्ग के विषय में पूछते हैं, और श्रीकृष्ण भक्ति की गूढ़ महिमा, उसकी पाप-नाशक शक्ति, द्रवित हृदय के लक्षण, तथा हृदय-कमल में अपने स्वरूप के ध्यान की पवित्र विधि को उद्घाटित करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव जिज्ञासा करते हैं कि ऋषिगण जिन अनेक साधन-मार्गों की प्रशंसा करते हैं, क्या उनमें से कोई एक सचमुच श्रेष्ठ है। कृष्ण उत्तर देते हैं कि प्रेमपूर्ण भक्ति स्वयं में सम्पूर्ण है, और जहाँ वह जीवित रहती है, वहाँ हृदय काँपता, रोता और गाता है। फिर वे ध्यान की पवित्र विधि उद्घाटित करते हैं — श्वास तथा आसन से लेकर हृदय में अपने ही तेजस्वी स्वरूप के दर्शन तक।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)

- अध्याय: 14 (चतुर्दश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: भगवान् कृष्ण द्वारा उद्धव को योग-विद्या का उपदेश
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका
- केन्द्रीय विषय: समस्त साधन-मार्गों से ऊपर भक्ति-योग की महिमा, तथा भगवान् के स्वरूप के ध्यान की विधि
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 1-46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 13 में भगवान् ने उद्धव को सत्त्व के अभ्यास से गुणों पर विजय पाना सिखाया, तथा स्मरण किया कि कैसे वे कभी दिव्य हंस के रूप में प्रकट होकर यह प्रकट कर चुके हैं कि आत्मा जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अपरिवर्तनशील साक्षी है। अपने सच्चे स्वरूप को जानकर, उद्धव अब पूछते हैं कि इसे कैसे जीया जाए।

अनेक मार्ग, और उद्धव की एक जिज्ञासा

उद्धव ने वही प्रश्न पूछा जो आज भी हर सच्चा साधक पूछता है: वेद परम कल्याण के अनेक साधन बताते हैं — क्या उनमें से कोई एक श्रेष्ठ है, या साधक को समान विकल्पों में से चुनना पड़ता है? उन्होंने यह भी स्मरण किया कि कृष्ण भक्ति-मार्ग को — जिससे मन समस्त आसक्ति त्यागकर केवल उन्हीं में स्थिर होता है — पहले ही शेष सबसे स्वतन्त्र घोषित कर चुके हैं।

श्रीउद्धव उवाच

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः ।

तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥ १ ॥

भवतोदाहृतः स्वामिन् भक्तियोगोऽनपेक्षितः ।

निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥ २ ॥

śrī-uddhava uvāca vadanti kṛṣṇa śreyāṁsi bahūni brahma-vādināḥ teṣāṁ vikalpa-prādhānyam utāho eka-mukhyatā bhavatodāhṛtaḥ svāmin bhakti-yogo 'napekṣitaḥ nirasya sarvataḥ saṅgaṁ yena tvayy āviśen manaḥ

अर्थ: उद्धव ने निवेदन किया: हे कृष्ण, वेद के ज्ञाता परम कल्याण के अनेक साधन बताते हैं। क्या किसी एक को साधक की रुचि से प्रधानता मिलती है, या महत्त्व केवल एक को है? भक्ति का वह मार्ग, जिससे मन समस्त आसक्ति त्यागकर आप में स्थिर होता है, आपने, हे स्वामी, समस्त अन्य साधनों से स्वतन्त्र घोषित किया है। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 1-2)



उद्धव पूछते हैं कि ऋषिगण जिन अनेक साधन-मार्गों की प्रशंसा करते हैं, क्या उनमें से कोई एक सचमुच शेष सबसे श्रेष्ठ है (श्लोक 1-2)।

शाश्वत वाणी — लुप्त होकर पुनः प्रकट

भगवान् ने इस शिक्षा को उसके मूल स्रोत तक ले जाकर उत्तर दिया। काल के प्रवाह में, उन्होंने कहा, वेद महाप्रलय में लुप्त हो जाता है, और प्रत्येक नई सृष्टि में वे उसे पुनः प्रदान करते हैं — ब्रह्मा को, फिर मनु तथा सप्त महर्षियों के माध्यम से प्राणिमात्र तक (श्लोक 3-7)। सत्त्व, रजस् तथा तमस् के भिन्न मिश्रण से निर्मित होने के कारण, उस एक शिक्षा की उनकी समझ उनके स्वभाव जितनी ही विविध हो गई, यहाँ तक कि कुछ पाखण्ड-मतों की ओर भटक गए (श्लोक 8-9)। इसलिए कोई परम कल्याण को धर्म कहता है, कोई सुख को, कोई धन या तप को — और ऐसा हर फल, भगवान् ने कहा, आदि-अन्त वाला है, केवल कर्म का फल, क्षणिक सुख ही देने वाला (श्लोक 10-11)। यही इस प्रवचन का केन्द्रीय सूत्र है: संसार का हर कल्याण काल से बँधा कर्म है; भक्ति किसी लक्ष्य का साधन नहीं अपितु स्वयं भगवान् की समीपता है — इसीलिए कोई साधन भक्ति जितना उन्हें वश में नहीं कर पाता, केवल श्रद्धामयी भक्ति से ही वे ग्राह्य होते हैं।

समर्पित आत्मा का असीम आनन्द

भगवान् ने पूछा, जिसका मन केवल मुझ पर स्थिर है, उसके सुख की तुलना विषय-सुखों में रमे मन के सुख से कैसे हो सकती है? जो किसी वस्तु को अपनी नहीं मानता और मुझमें सन्तुष्ट रहता है, उसके लिए चारों दिशाएँ आनन्द से भर जाती हैं; वह अब ब्रह्मा का पद, इन्द्र का राज्य, अथवा मुझसे पृथक् मुक्ति तक नहीं चाहता (श्लोक 12-14)। तब भगवान् ने अद्भुत कोमलता से कहा कि ऐसी आत्मा उन्हें कितनी प्रिय है।

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः ।

न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥ १५ ॥

na tathā me priyatama ātma-yonir na śaṅkaraḥ na ca saṅkarṣaṇo na śrīr naivātmā ca yathā bhavān

अर्थ: न तो ब्रह्मा, जो मेरा ही स्वरूप हैं, न शिव, जो मेरी ही आत्मा हैं; न संकर्षण (बलराम), मेरे बड़े भ्राता, न श्री, मेरी अर्धांगिनी; न स्वयं मेरा अपना व्यक्तित्व भी, मुझे उतना प्रिय नहीं जितनी तुम हो। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 15)

वे कहते हैं कि ऐसी आत्मा के पदचिह्नों का वे निरन्तर अनुसरण करते हैं — शान्त, वैर-रहित, सब में समभाव रखने वाली — ताकि उसके चरण-रज से वे स्वयं पवित्र हो सकें; उनका परमानन्द-स्वरूप केवल उसी को ज्ञात होता है जिसका मन इच्छा-रहित होकर कुछ भी अपना नहीं मानता (श्लोक 16-17)।

भक्ति की शक्ति

भगवान् ने आगे कहा कि जिस भक्त ने अभी इन्द्रियों पर पूर्ण विजय नहीं पाई, वह भी प्रायः विषयों से अभिभूत नहीं होता, क्योंकि उसकी नई भक्ति भी पहले से ही सशक्त है।

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् ।
तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥

yathāgniḥ su-samṛddhārciḥ karoty edhāṁsi bhasmasāt tathā mad-viṣayā bhaktir uddhavaināmsi kṛtsnaśaḥ

अर्थ: जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, वैसे ही, हे उद्धव, मेरी ओर की हुई भक्ति उसके स्वामी के पापों को पूर्णतः भस्म कर देती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 19)



जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है, भगवान् कहते हैं, वैसे ही उनकी ओर की हुई भक्ति पाप को पूर्णतः भस्म कर देती है (श्लोक 19)।

न योग, न साङ्ख्य, न शास्त्राध्ययन, न तप, न त्याग — कोई भी मुझे उतना वश में नहीं कर पाता जितना भक्ति करती है (श्लोक 20) — और उन्होंने इसका कारण भी बताया।

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् ।

भक्तिः पुनाति मन्त्रिष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ॥ २१ ॥

bhaktyāham ekayā grāhyaḥ śraddhayātmā priyaḥ satām bhaktiḥ punāti man-niṣṭhā śva-pākān api sambhavāt

अर्थ: केवल भक्ति से ही, श्रद्धा सहित, मैं — सन्तों का प्रिय आत्मा — ग्राह्य हूँ; मुझमें स्थिर भक्ति नीच कुल में जन्मे व्यक्ति को भी पवित्र कर देती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 21)

सत्य तथा दया से युक्त धर्म, अथवा तप से युक्त विद्या भी, उन्होंने जोड़ा, भक्तिरहित मन को पूर्णतः शुद्ध नहीं कर सकती (श्लोक 22)।

प्रेम से द्रवित हृदय के लक्षण

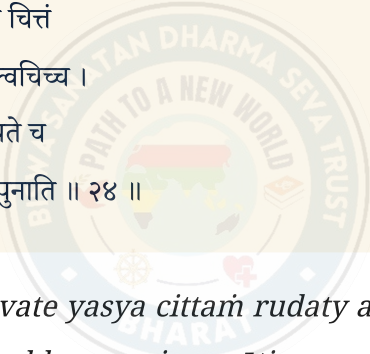
भगवान् ने पूछा, रोमांच, द्रवित हृदय तथा आनन्दाश्रुओं के बिना भक्ति को कैसे पहचाना जाए (श्लोक 23)?

वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं

रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।

विलज्ज उद्गायति नृत्यते च

मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥ २४ ॥



vāg gadgadā dravate yasya cittam rudaty abhīkṣṇam hasati kvacic ca vilajja udgāyati nṛtyate ca mad-bhakti-yukto bhuvanam punāti

अर्थ: जिसकी वाणी भाव से गद्गद हो जाती है, जिसका हृदय द्रवित होता है, जो बार-बार रोता है, हँसता है, निर्लज्ज होकर गाता तथा मेरे प्रेम में नाचता है — ऐसी आत्मा सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 24)



जिसकी वाणी भाव से गद्गद होती है, जिसका हृदय द्रवित होता है, जो निर्लज्ज होकर गाता तथा प्रेम में नाचता है, ऐसी आत्मा सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर देती है (श्लोक 24)।

जैसे अग्नि में तपाया हुआ सोना अपनी मैल त्याग देता है, वैसे ही आत्मा भक्ति के द्वारा अपने पूर्व कर्मों के बीज त्यागकर उनमें एकत्व प्राप्त करती है; और उनकी पावन कथाओं को सुनने तथा कहने से जितना मन शुद्ध होता है, उतना ही वह आत्मा की सूक्ष्म वास्तविकता को स्पष्ट देखता है, जैसे औषधि-युक्त नेत्र सूक्ष्मतम वस्तु को भी देख लेता है (श्लोक 25-26)।

मन को स्वगृह की ओर मोड़ना

विषयों का चिन्तन करने वाला मन उन्हीं में आसक्त हो जाता है, जबकि उनका स्मरण करने वाला मन उन्हीं में लीन हो जाता है; साधक स्वप्न-सदृश असत् वस्तुओं को त्यागकर अपने शुद्ध मन को उन्हीं पर स्थिर करे (श्लोक 27-28)। कुछ काल के लिए, उन्होंने परामर्श दिया, साधक मन को विचलित करने वाले संग से दूर रहकर एकान्त तथा सुरक्षित स्थान में बैठकर अथक भाव से उनका चिन्तन करे (श्लोक 29-30)।

उद्धव ध्यान की विधि पूछते हैं

इससे प्रेरित होकर, उद्धव ने कमलनयन भगवान् से एक और प्रश्न पूछा: मुमुक्षु साधक को उनका ध्यान किस प्रकार, किस रूप में करना चाहिए (श्लोक 31)?

आसन, प्राण और पवित्र नाद

भगवान् ने धैर्यपूर्ण, व्यावहारिक विवरण के साथ उत्तर दिया।

श्रीभगवानुवाच

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।

हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥ ३२ ॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ।

विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३३ ॥

śrī-bhagavān uvāca sama āsana āsīnaḥ sama-kāyo yathā-sukham hastāv utsaṅga ādhāya svanāsāgra-kṛtekṣaṇaḥ prāṇasya śodhayen mārgaṁ pūra-kumbhaka-recakaiḥ viparyayeṇāpi śanair abhyasen nirjitendriyaḥ

अर्थ: न अधिक ऊँचे न नीचे, समान आसन पर बैठकर, शरीर सीधा तथा सहज रखते हुए, दोनों हाथ गोद में हथेली ऊपर किए हुए, दृष्टि नासाग्र पर स्थिर करते हुए, इन्द्रियों को वश में करके, धीरे-धीरे पूरक-कुम्भक-रेचक द्वारा प्राण-मार्ग को शुद्ध करे, तथा इसी क्रम को विपरीत क्रम में भी अभ्यास करे। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 32-33)



न अधिक ऊँचे न नीचे समान आसन पर बैठकर, शरीर सीधा रखते हुए, साधक भगवान् के उपदेश अनुसार श्वास तथा दृष्टि को स्थिर करता है (श्लोक 32-33)।

प्राण के सहारे ऊँकार मन में कमल-तन्तु सदृश सूक्ष्म तथा अविच्छिन्न रूप से उठे, और फिर घण्टानाद सदृश निरन्तर नासिका-ध्वनि के साथ अनुगमन करे; इस प्रकार तीनों सन्ध्याओं में दस-दस बार अभ्यास करने से साधक एक मास के भीतर प्राण पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है (श्लोक 34-35)।

हृदय में भगवान् का दर्शन

तब भगवान् ने, माता-सदृश वात्सल्य से, उस दर्शन का वर्णन किया जिसकी प्रत्येक साधक प्रतीक्षा करता है: हृदय को अधोमुख कमल के रूप में कल्पित करे, जिसकी नाल ऊपर की ओर उठी हो, अब आठ जागृत दलों सहित खुला हुआ; उसकी कर्णिका पर सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि को क्रमशः स्थापित करे, और उस अग्नि के मध्य अपने ही स्वरूप का स्मरण करे — शान्त, सौम्य, दीर्घ तथा सुन्दर चार भुजाओं वाला, सुन्दर ग्रीवा, मधुर मुस्कान, मकराकार कुण्डल, घनश्याम वर्ण पर स्वर्णिम वस्त्र, श्रीवत्स का चिह्न, वनमाला, नूपुर, कौस्तुभ मणि की आभा, तेजस्वी मुकुट तथा बाजूबन्द — सर्वांग सुन्दर, कृपा-पूर्ण नेत्रों वाला (श्लोक 36–41)। इस सुकुमार रूप का ध्यान करे, उन्होंने कहा, मन को प्रत्येक अंग पर क्रमशः स्थिर करते हुए — और फिर आता है निर्णायक चरण।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः ।

बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥ ४२ ॥

indriyāṇīndriyārthebhyo manasākṛṣya tan manaḥ buddhyā sārathinā dhīraḥ praṇayen mayi sarvataḥ

अर्थ: मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से, तथा बुद्धि के द्वारा मन को शेष सबसे खींचकर, धीर साधक बुद्धि रूपी सारथि के सहारे उसे सर्वथा मुझमें ही लगाए। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 42)



मन को अनन्त में समेटना

इसके पश्चात्, एकत्र हुए मन को केवल एक ही अंग पर — उस कृपा-पूर्ण, मुस्कराते मुख पर — स्थिर करे; फिर उसे उस मुख से भी हटाकर भगवान् के सर्वव्यापी स्वरूप पर, आकाश सदृश असीम, टिका दे, और उससे भी परे जाकर किसी का भी चिन्तन न करे (श्लोक 43–44)। इसके बाद आता है सम्पूर्ण भागवत के सबसे ज्योतिर्मय श्लोकों में से एक।

एवं समाहितमतिर्मांमेवात्मानमात्मनि ।

विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥ ४५ ॥

evam samāhita-matir mām evātmānam ātmani vicaṣṭe mayi sarvātman jyotir jyotiṣi saṁyutam

अर्थ: इस प्रकार स्थिर मन से, वह मुझे अपनी ही आत्मा के रूप में अपने भीतर देखता है, और हे सर्वात्मन्, स्वयं को वास्तव में मुझमें लीन पाता है, जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योति में विलीन हो जाती है। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 45)



स्थिर मन से साधक भगवान् को अपनी ही आत्मा के रूप में भीतर देखता है और स्वयं को उन्हीं में लीन पाता है, जैसे एक ज्योति दूसरी ज्योति में विलीन हो जाती है (श्लोक 45)।

जो मुक्ति फलित होती है

भगवान् ने प्रत्येक सच्चे साधक से एक वचन के साथ यह उपदेश समाप्त किया।

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतो योगिनो मनः ।

संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्य ज्ञानक्रियाभ्रमः ॥ ४६ ॥

dhyānenetthaṁ su-tīvreṇa yuñjato yogino manaḥ saṁyāsyaty āśu nirvāṇaṁ dravya jñāna-kriyā-bhramaḥ

अर्थ: इस प्रकार अत्यन्त तीव्र ध्यान से अपने मन को नियोजित करने वाले योगी के द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया सम्बन्धी भ्रम शीघ्र ही विलीन हो जाएँगे, और वह शीघ्र ही परम शान्ति प्राप्त करेगा। (स्कन्ध 11, अध्याय 14, श्लोक 46)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. भक्ति अकेली ही स्वयं में सम्पूर्ण है। प्रत्येक अन्य साधन किसी और लक्ष्य का माध्यम है; भक्ति को सहारे की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वह स्वयं भगवान् की समीपता है (श्लोक 1-2, 20-21)।
2. संसार का हर कल्याण काल-बद्ध है; भक्ति असीम है। धर्म, यश, सुख तथा शक्ति का फल आदि-अन्त वाला है; समर्पित आत्मा ही चारों दिशाओं को भरने वाला आनन्द जानती है (श्लोक 10-14)।
3. भगवान् को भक्त के हृदय से बढ़कर कुछ प्रिय नहीं। न ब्रह्मा, न शिव, न बलराम, न श्री — समर्पित आत्मा जितनी वे किसी को प्रिय नहीं मानते (श्लोक 15)।

4. भक्ति अकेली ही भगवान् को वश में करती है और पाप भस्म करती है। जैसे अग्नि काष्ठ को भस्म करती है, वैसे ही भक्ति पाप भस्म करती है; केवल श्रद्धा से ही भगवान् ग्राह्य होते हैं (श्लोक 18–21)।
5. सच्ची भक्ति रोमांच, अश्रु तथा गान में प्रकट होती है। गद्गद वाणी, द्रवित हृदय, अश्रु तथा नृत्य भक्ति के लक्षण हैं, जो जगत् को पवित्र करते हैं (श्लोक 22–26)।
6. साधक श्वास, आसन तथा ॐकार को साधता है। आसन, नियन्त्रित श्वास तथा त्रिकाल अभ्यासित ॐकार से मन वश में होकर भगवान् के लिए सन्नद्ध होता है (श्लोक 27–35)।
7. भगवान् के स्वरूप का ध्यान रूप से परे एकत्व की ओर ले जाता है। हृदय-कमल में उनके चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान करते हुए, साधक मन अंग-अंग समेटकर अन्ततः एक ज्योति को सर्वज्योति में विलीन कर देता है (श्लोक 36–46)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस शिक्षा के साथ बैठने के बाद जो सबसे अधिक मन में रह जाता है, वह कोई विधि नहीं अपितु एक मुखमण्डल है — कृपा-पूर्ण, मुस्कराता हुआ, जो केवल हृदय के भीतर स्मरण किए जाने की प्रार्थना करता है। कृष्ण के लिए इतना ही पर्याप्त होता कि वे भक्ति को संसार के अनेक मार्गों से ऊपर रख दें; परन्तु वे यह भी प्रकट करते हैं कि वे उस हृदय के कितने निकट हैं जो उनकी ओर मुड़ चुका है। और वे किसी निर्दोष साधक की माँग नहीं करते: जिसकी इन्द्रियाँ अभी वश में नहीं हुई, वह भी थोड़ी-सी भक्ति से संकट के पार पहुँच जाता है, जैसे छोटी-सी चिंगारी सम्पूर्ण वन को भस्म कर सकती है। हमसे यह नहीं कहा जाता कि प्रेम से पहले शुद्ध बनो; प्रेम करना ही शुद्ध कर देता है। और जब वह प्रेम सच्चा होता है, तो वाणी गद्गद होती है, नेत्र गीले होते हैं, और शरीर गीत में बदल जाता है। इस अध्याय के साथ बैठना एक निमन्त्रण पाना है, कोई आदेश नहीं — शान्त श्वास लेते हुए मन को उस मुखमण्डल की ओर लौटने देना जो सदा हृदय के केन्द्र में प्रतीक्षा करता रहा है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, कुछ शान्त क्षण निकालकर इस अध्याय को संक्षेप में जीएँ। सहज होकर बैठें, श्वास को धीमा होने दें, और भगवान् के मुस्कराते मुख की कल्पना अपने हृदय-कमल में करें। जब मन भटके, तो उसे कोमलता से वापस खींचें और उनके पावन नाम से शान्त करें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” श्रद्धा सहित दिए गए कुछ क्षण भी वही भक्ति हैं जिसे भगवान् स्वयं में सम्पूर्ण कहते हैं।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का यह चतुर्दश प्रवचन उसी प्रश्न का उत्तर देता है जिससे वह आरम्भ होता है: संसार के बताए हर मार्ग में से, भगवान् की भक्ति अकेली ही स्वयं में पर्याप्त है। श्रीकृष्ण दिखाते हैं कि संसार का हर कल्याण काल तथा दुःख से बँधा है, और घोषित करते हैं कि जिसका हृदय पूर्णतः उन्हीं में स्थिर है, उससे बढ़कर कोई आत्मा उन्हें प्रिय नहीं। भक्ति अकेली ही, वे कहते हैं, उन्हें वश में कर सकती है और पाप भस्म कर सकती है, जो रोमांच, अश्रु तथा गान में प्रकट होती है। फिर, उद्धव के अनुरोध पर, वे ध्यान की विधि उद्घाटित करते हैं — आसन, श्वास, ॐकार, तथा हृदय के भीतर अपने ही स्वरूप का दर्शन — साधक को उस दर्शन से भी परे उस मौन तक ले जाते हुए जहाँ आत्मा अपने परम उद्गम में सदा के लिए घुलमिल जाती है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, चतुर्दश प्रवचन, पृष्ठ 575–579।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-14-yoga-vidhi-ka-upadesh-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट